ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(7): 268-270
www.allresearchjournal.com
Received: 12-05-2016
Accepted: 15-06-2016

Pradeep Tiwary
Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, India

Correspondence
Pradeep Tiwary
Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, India

आनन्दवर्धन अनुसार ध्वनि स्वरूप का विश्लेषण

Pradeep Tiwary

प्रस्तावना

आनन्दवर्धन को ध्वनिसम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। ध्वनि–विषय की सारी विप्रतिपत्तियों का निराकरण कर उन्होंने इसका असन्दिग्ध स्वरूप 'सहृदयमनः प्रीतये' व्यक्त किया है। उनके अनुसार ध्वनि एक विशेष प्रकार का काव्य तत्त्व है उन्होंने जिसे ध्वनि से लक्षित किया है इसके लिए उनकी उक्ति है –

योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।।[1]

सहृदयों द्वारा प्रशंसित जो अर्थ काव्य के आत्मारूप में प्रतिष्ठित है उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद कहे गये हैं। अर्थात् शरीर में आत्मा के समान, सुन्दर (गुणालंकारयुक्त), उचित रसादि के अनुरूप रचना के कारण रमणीय काव्य के सारूप्य में स्थित सहृदयप्रशंसित जो अर्थ है उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद हैं।

1. वाच्य
2. प्रतीयमान

जिस काव्य में उसके वाचक शब्द अपने वाच्य अर्थ को तथा वाच्य अर्थ स्वयं को गौण या अप्रधान कर प्रतीयमान अथवा व्यंग्य अर्थ को प्रधानरूप से व्यक्त करते हैं। उसे ही आनन्दवर्धन ने ध्वनि के रूप में सुस्पष्ट किया हैः–

तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारैरुमादिभिः।
बहुधा व्याकृतः सोऽन्यैः।।[2]

उनमें से, वाच्य अर्थ वह है जो उपमादि (गुणालंकारयुक्त) प्रकारों से प्रसिद्ध है और अन्यों ने (पूर्व काव्य लक्षणकारों ने) अनेक प्रकार से इसका वर्णन किया है।

प्रतीयमान का अर्थ–प्रतीयमान कुछ भिन्न वस्तु ही है जो रमणियों के प्रसिद्ध, मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासिकादि अवयवों से भिन्न उनके लावण्य के समान, महाकवियों की सूक्तियों में (वाच्य अर्थ से) अलग ही भासित होता हैः–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवा¯नासु।।[3]

अर्थात् महाकवियों की वाणियों में वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है। जैसे प्रसिद्ध अलंकारों अथवा प्रतीत होने वाले अवयवों से भिन्न, सहृदयसुप्रसिद्ध अंगनाओं के लावण्य के समान अलग ही प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सुन्दरियों का सौन्दर्य पृथक् दिखायी देने वाला समस्त अवयवों से भिन्न सहृदय नेत्रों के लिए अमृततुल्य कुछ और ही तत्व है, इसी प्रकार वह 'प्रतीयमान' अर्थ है।

वह 'प्रतीयमान' अर्थ वाच्य से युक्त होकर वस्तुमात्र, अलंकार और रसादि के भेद से अनेक प्रकार का प्रतीत होता है।

उन सभी भेदों में वह वाच्य से अभिन्न ही है। जैसे पहला (वस्तुध्वनि) भेद वाच्य से अत्यन्त भिन्न है। क्योंकि कहीं वाच्य के विधि रूप होने पर भी वह प्रतीयमान निषेध रूप होता है। उदाहरणार्थ–

भ्रम धार्मिक विस्त्रब्धः स शूनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदानदीकच्छकुर्{वासिना दृप्तसिंहेन।।[4] इतिच्छाया

अर्थात् पंडित जी महाराज! गोदावरी के किनारे कुंज में रहने वाले मदमत्त सिंह ने आज उस कुत्ते को मार डाला है, अब आप निंश्चित होकर घूमिये।
इस श्लोक में, 'धार्मिक' पद पण्डित जी महाराज की भीरुता का, 'दृप्त' पद सिंह की भीषणता के अतिरेक का और 'वासिना' पद सिंह की निरन्तर विद्यमानता का सूचक है। इसलिए वाच्यार्थ से प्रतीयमान अर्थ अत्यन्त भिन्न है।
कहीं वाच्यार्थ प्रतिषेधरूप होने पर प्रतीयमानार्थ विधिरूप होता है। जैसे–

ष्ठाश्रूरत्र निमज्जति अत्राहंदिवसकं प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायामामयोर निमंक्ष्यसि।।[5]

अर्थात् हे पथिक! दिन में अच्छी तरह देख लो, यहाँ सासजी सोती हैं और यहाँ मैं सोती हूँ (रात को) रतौंधीग्रस्त होकर कहीं हमारी खाट पर न गिर पड़ना।
यहाँ वाच्यार्थ निषेध है परन्तु व्य`यार्थ (प्रतीयमान) विधिरूप है। कहीं वाच्य विधिरूप होने पर प्रतीयमान अर्थ अनुभयात्मक होता है। उदाहरण के लिए–

वज्र ममैवैकस्या भवन्तु निःष्ठ्ाासरोदितव्यानि।
मा तवापि तया विना दाक्षिण्यहतस्य जनिषत।।[6]

अर्थात्! तुम जाओं, मैं अकेली ही निष्ठ्ाास और रोने को भोंगूँ सो अच्छा है, कहीं दाक्षिण्य (मेरे प्रति भी अनुराग) के चक्कर में पड़कर, उसके बिना तुमको भी यह सब न भोगना पड़े।
इसलिए यहाँ प्रतीयमान अर्थ अनुभयरूप है।
नाना प्रकार के शब्द, अर्थ संघटना के प्रतिती से मनोहर काव्य का सारभूत (आत्मा) वही (प्रतीयमानरस) अर्थ है। तभी सहचरी के वियोग से कातर क्रौं{ा के क्रन्दन से उत्पन्न आदिकवि बाल्मीकि का शोक श्लोक रूप में परिणत हुआ। उदाहरणार्थ–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाष्ठ्ातीः समाः।
यत् क्रौं{ामिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[7]

उन्होंने आगे भी प्रतीयमान अर्थ को कहा है–

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फरन्तं प्रतिभावविशेषम्।।[8]

उस आस्वादमय अर्थत्त्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी उनके आलौकिक, प्रतिभासमान प्रतिभा के वैशिष्ट्य को प्रकट करती है।
अर्थात् उस (प्रतीयमान रसभावादि) अर्थतत्व को प्रवाहित करने वाली महाकवियों की वाणी अनेक अलौकिक प्रतिभासमान प्रतिभाविशेष (अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा) को व्यक्त करती है। जिसके कारण नानाविध कविपरम्पराशाली इस संसार में कालिदास आदि दो–तीन अथवा पांच–छः ही महाकवि गिने जाते हैं।

प्रतीयमान अर्थ की सत्ता सिद्ध करने वाला यह और भी प्रमाण है–

शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।
वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्।।[9]

वह प्रतीयमान अर्थ शब्दमात्र अर्थात् व्याकरणादि और अर्थशास्त्र अर्थात् कोशादि के ज्ञानमात्र से ही प्रतीत नहीं होता, वह तो केवल काव्यमर्मज्ञों को ही विदित होता है।
इस प्रकार वाच्यार्थ से भिन्न व्य`य की सत्ता को सिद्ध करके प्राधान्य भी उसी का है यह द्रष्टव्य है–

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दúा कúान।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः।।[10]

वह प्रतीयमान अर्थ और उसकी अभिव्यक्ति में सामर्थ्यविशेष शब्द, इन दोनों को भली प्रकार पहिचानने का प्रयत्न महाकवि को जो (महाकवि बनना चाहे उसको) करना चाहिए।
इस प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए आनन्दवर्धन ने कहा–

आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवान् जनः।
तदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदादृतः।।[11]

अर्थात् जिस प्रकार कोई व्यक्ति प्रकाश के लिए दीपशिशा को प्रज्वलित करने का प्रयास करता है, उसी प्रकार ध्वन्यर्थ का अभिलाषी वाच्यार्थ की अपेक्षा रखता है।
अन्य शब्दों में जिस प्रकार वाच्यार्थ और उससे व्यंजना शक्ति के द्वारा अभिव्यक्त ध्वन्यर्थ अलग–अलग तत्व है।
इस पर लोचनकार की टिप्पणी है–

"सर्वत्र शब्दार्थयोरुभयोरपि ध्वननव्यापारः।[12]

स (काव्यविशेषः) इति। अर्थो वा शब्दों वा, व्यापारो वा। अर्थोऽपि वाच्यो वा ध्वनतीति शब्दोऽप्येयं व्य`यो वा ध्वन्यत इति। व्यापारो वा शब्दार्थयोर्ध्वननमिति। कारिकया तु प्राधान्येन समुदाय एव वाच्यरूपमुखतया ध्वनिरिति प्रतिपादितम्"।
अर्थात् सर्वत्र शब्द और अर्थ दोनों का ही ध्वनन व्यापार होता है . ...। यह 'काव्यविशेष' का अर्थ हैः अर्थ या शब्द या व्यापार वाच्य अर्थ भी ध्वनन करता है और शब्द भी इसी प्रकार व्य`य (अर्थ) भी ध्वनित होता है। अथवा शब्द अर्थ का व्यापार भी ध्वनन है। इस प्रकार कारिका के द्वारा प्रधानतया समुदाय शब्द, अर्थ–वाच्य (व्यंजक) अर्थ और व्य`य अर्थ तथा शब्द और अर्थ का व्यापार ही ध्वनि है।
अभिनव गुप्त के अनुसार ध्वनि संज्ञा केवल काव्य को ही नहीं दी गयी वरन् शब्द, अर्थ और शब्द के व्यापार, इन सबको ध्वनि कहते हैं।
ध्वनिशब्द की व्युत्पत्ति–अर्थो से भी ये पांचों भेद सिद्ध हो जाते हैं–

1. 'ध्वनति ध्वनयति वा यः स (व्यंजक) शब्दः ध्वनिः'– जो ध्वनित करे या कराये वह (व्यंजक) शब्द ध्वनि है।
2. 'ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यंजकोऽर्थः ध्वनिः'– जो ध्वनित करे या कराये वह (व्यंजक) अर्थ ध्वनि है।
3. 'ध्वन्यते इति ध्वनिः'– जो ध्वनित किया जाये वह ध्वनि है। इसमें रस, अलंकार और वस्तु व्य`य अर्थ के ये तीनों रूप जाते हैं।
4. 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः'– जिसके द्वारा ध्वनित किया जाये वह ध्वनि है। इससे शब्द अर्थ के व्यापार व्य°ना आदि शक्तियों का बोध होता है।

5. 'ध्वन्यतेऽस्मिनन्निति ध्वनिः'– जिसमें वस्तु, अलœार रसादि ध्वनित हो उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।
6. इस प्रकार ध्वनि का प्रयोग पांच भिन्न–भिन्न परन्तु परस्पर सम्बद्ध अर्थों में होता है–

(1) व्यंजक शब्द (2) व्यंजक अर्थ (3) व्य¯य अर्थ (4) व्यंजक (व्यंजना–व्यापार) और (5) व्य¯यप्रधान काव्य।

विश्लेषण करने पर ध्वनि का अर्थ, व्य¯य, परन्तु परिभाषिक रूप में यह व्य¯य वाच्यातिशायी होना चाहिएः वाच्यातिशायिनि व्य¯ये ध्वनिः– इस अतिशय अथवा प्राधान्य का आधार है चारुत्व अर्थात् रमणीयता का उत्कर्ष।

चारुत्वोत्कर्ष निबन्धना कि वाच्यव्य¯ययोः प्राधान्यविवक्षा। अतएव वाच्यातिशायी का अर्थ हुआ वाच्य से अधिक आह्लाद्क। अतः हम ध्वनि का संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार कर सकते हैंः 'वाच्य से अधिक चमत्कार युक्त व्य¯य वाले काव्य को ध्वनि कहते है।"

संदर्भ सूची

1. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 2।
2. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 3।
3. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 4।
4. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 6।
5. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 7।
6. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 8।
7. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : प्रथम उद्योत, श्लोक– 6।
8. आचार्य विद्वानाथ : साहित्य दर्पण।
9. आनन्द वर्धन : ध्वन्यालोक।